4 डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी

लेखक : एक संक्षिप्त परिचय

- **जन्म**—सन् 1907 ई०।
- **जन्म-स्थान**—दुबे का छपरा (बलिया)।
- **पिता**—अनमोल द्विवेदी।
- **माता**—ज्योतिषमती।
- **बचपन का नाम**—वैद्यनाथ द्विवेदी।
- अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्यरत रहे।
- **मृत्यु**—18 मई, सन् 1979 ई०।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का जन्म श्रावण शुक्ल पक्ष एकादशी संवत् 1964 (सन् 1907 ई0) को बलिया जिले के 'दुबे का छपरा' गाँव के एक प्रतिष्ठित सरयूपारी ब्राह्मण-कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम अनमोल द्विवेदी था। माता ज्योतिषमती भी प्रसिद्ध पण्डित कुल की कन्या थीं। इस तरह बालक हजारीप्रसाद को संस्कृत और ज्योतिष की शिक्षा उत्तराधिकार में प्राप्त हुई। सन् 1930 ई0 में इन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से ज्योतिषाचार्य की उपाधि प्राप्त की। इनकी प्रतिभा का विशेष स्फुरण कविगुरु रवीन्द्रनाथ की विश्वविख्यात् संस्था शान्तिनिकेतन में हुआ, जहाँ ये सन् 1940 से 1950 तक हिन्दी भवन के निदेशक के रूप में रहे। यहीं इनके विस्तृत स्वाध्याय और सृजन का शिलान्यास हुआ। सन् 1949 में लखनऊ विश्वविद्यालय ने इन्हें डी0 लिट्0 की उपाधि से सम्मानित किया। सन् 1950 में ये काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर और अध्यक्ष नियुक्त हुए। सन् 1957 में इन्हें पद्म-भूषण की उपाधि से विभूषित किया गया। सन् 1958 में ये राष्ट्रीय ग्रंथ न्यास के सदस्य बने। ये कई वर्षों तक काशी नागरी प्रचारिणी सभा के उपसभापति, खोज विभाग के निर्देशक तथा 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के सम्पादक रहे। इसके बाद सन् 1960 से 1966 तक ये पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ में हिन्दी विभाग के प्रोफेसर और अध्यक्ष रहे। तत्पश्चात् इन्होंने भारत सरकार की हिन्दी सम्बन्धी विविध योजनाओं का दायित्व ग्रहण किया। 18 मई, 1979 ई0 को इनका निधन हो गया।

आचार्य द्विवेदी का साहित्य बहुत विस्तृत है। कविता और नाटक के क्षेत्र में इन्होंने प्रवेश नहीं किया। इनकी कृतियाँ वर्गीकरण के आधार पर निम्नलिखित हैं—

इतिहास–*हिन्दी साहित्य, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हिन्दी साहित्य की भूमिका।*

निबंध संग्रह–*अशोक के फूल, कुटज, विचार-प्रवाह, विचार और वितर्क, कल्पलता, आलोक पर्व।*

साहित्यिक, शास्त्रीय और आलोचनात्मक ग्रंथ–*कालिदास की लालित्य योजना, सूरदास, कबीर, साहित्य सहचर, साहित्य का मर्म।*

उपन्यास–*बाणभट्ट की आत्मकथा, अनामदास का पोथा, चारुचन्द्र लेख* और *पुनर्नवा।*

हिन्दी के उच्चस्तरीय ललित निबंधकारों में आचार्य द्विवेदी का मूर्धन्य स्थान है। आत्माभिव्यंजना के साथ-साथ साहित्य, संस्कृति, प्रकृति-सुषमा, लोक-जीवन और समकालीन समस्याओं का मिला-जुला रसास्वादन कराने में इनकी शैली

अभिनव है। इनके निबंधों में एक ओर महाभारत, कालिदास, बाणभट्ट आदि संस्कृत ग्रंथों की सूक्तियाँ सँजोयी रहती हैं; तो दूसरी ओर रवीन्द्र, कबीर, रज्जब, सूर, तुलसी आदि बँगला और हिन्दी कवियों की वाणी की छटा भी दृष्टिगोचर होती चलती है। साथ ही कहीं-कहीं भारतीय संस्कृति के स्मृति-चिह्न उभर कर आते हैं, तो कहीं भारत की निःसर्ग शोभा का संदेश लेकर अशोक के फूल, देवदारु की छाया और कुटज की शाखाएँ झाँक जाती हैं। इनका उन्मुक्त व्यक्तित्त्व रह-रहकर इनके निबंधों में विनोद की हिलोर उठाता चलता है, पर कभी-कभी ये अपनी संस्कृति की विस्मृति अथवा मानव पतन के विषाद से संजीदा भी दिखायी पड़ते हैं। देश-प्रेम और मानव-प्रेम का व्यापक चित्र इनके साहित्य के पटल पर अंकित है। **डॉ0 विद्यानिवास मिश्र** ने इनके निबंधों की विशेषता बताते हुए लिखा है—*"द्विवेदीजी बहुश्रुत हैं और हैं कथाकौतुकी भी। उनके निबंधों का सबसे मुख्य गुण है किसी एक विषय को लेकर अनेक विचारों को छेड़ देना—जिस प्रकार वीणा के तार को छेड़ने से बाकी सब तार झंकृत हो उठते हैं, उसी प्रकार उस एक विषय को छूते ही लेखक की चित्र-भूमि पर बँधे हुए सैकड़ों विचार बज उठते हैं।"* द्विवेदीजी के निबंध अनेक विधाओं के ज्ञान-भण्डार हैं। उनमें इतिहास, पुरातत्त्व, ज्योतिष, दर्शन और शास्त्रों का सुगम सार-संग्रह है। ज्ञान-गरिमा के साथ लालित्य का इन्होंने अद्‌भुत योग किया है।

आचार्य द्विवेदी की भाषा शुद्ध, परिमार्जित, प्रौढ़ और सरस खड़ीबोली है। इनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ उर्दू, फारसी एवं अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग हुआ है। कहावतों एवं मुहावरों का भी प्रयोग किया गया है। इनकी शैलियों में विचारात्मक, गवेषणात्मक, व्यंग्यात्मक, सूत्रात्मक, भावात्मक, आलंकारिक, वर्णनात्मक आदि के रूप दिखायी पड़ते हैं।

कन्दर्प देवता के पाँच प्रमुख पुष्पों में से एक है–अशोक का फूल। कालिदासकालीन साहित्य में अशोक का प्रचुरता से उल्लेख मिलता है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि उदास नहीं है। दो हजार वर्ष पूर्व कालिदास के समय में जब उसे बहुत सम्मान मिला था, जैसा प्रसन्नचित्त था, वैसा आज अनादरित होकर है। लेखक का मानना है कि अशोक में परिवर्तन नहीं आया, किन्तु मनुष्य की मनोवृत्ति में तो परिवर्तन हो गया है। प्राचीन संस्कृति की ही तरह इस वृक्ष की उपेक्षा से द्विवेदीजी चिन्तित हैं। वर्तमान में भारतीय संस्कृति में अशोक के पेड़ की उपेक्षा के माध्यम से प्राचीन संस्कृति के विस्मरण के प्रति अपनी चिन्ता दिखायी है।

अशोक के फूल

अशोक में फिर फूल आ गये हैं। इन छोटे-छोटे, लाल-लाल पुष्पों के मनोहर स्तवकों में कैसा मोहक भाव है। बहुत सोच-समझकर कंदर्प-देवता ने लाखों मनोहर पुष्पों को छोड़कर सिर्फ पाँच को ही अपने तुणीर में स्थान देने योग्य समझा था। एक यह अशोक ही है।

लेकिन पुष्पित अशोक को देखकर मेरा मन उदास हो जाता है। इसलिए नहीं कि सुन्दर वस्तुओं को हतभाग्य समझने में मुझे कोई विशेष रस मिलता है। कुछ लोगों को मिलता है। वे बहुत दूरदर्शी होते हैं। जो भी सामने पड़ गया, उसके जीवन के अन्तिम मुहूर्त तक का हिसाब वे लगा लेते हैं। मेरी दृष्टि इतनी दूर तक नहीं जाती। फिर भी मेरा मन इस फूल को देखकर उदास हो जाता है। असली कारण तो मेरे अंतर्यामी ही जानते होंगे, कुछ थोड़ा-सा मैं भी अनुमान कर सकता हूँ। बताता हूँ।

भारतीय साहित्य में, और इसलिए जीवन में भी, इस पुष्प का प्रवेश और निर्गम दोनों ही विचित्र नाटकीय व्यापार है। ऐसा तो कोई नहीं कह सकता कि कालिदास के पूर्व भारतवर्ष में इस पुष्प का कोई नाम ही नहीं जानता था, परन्तु कालिदास के काव्यों में यह जिस शोभा और सौकुमार्य का भार लेकर प्रवेश करता है, वह पहले कहाँ था। उस प्रवेश में नववधू के गृह-प्रवेश की भाँति शोभा है, गरिमा है, पवित्रता है और सुकुमारता है। फिर एकाएक मुसलमानी सल्तनत की प्रतिष्ठा के साथ-ही-साथ यह मनोहर पुष्प साहित्य के सिंहासन से चुपचाप उतार दिया गया। नाम तो लोग बाद में भी लेते थे, पर उसी प्रकार जिस प्रकार बुद्ध, विक्रमादित्य का। अशोक को जो सम्मान कालिदास से मिला, वह अपूर्व था। सुन्दरियों के आसिंजनकारी नूपुरवाले चरणों के मृदु आघात से वह फूलता था, कोमल कपोलों पर कर्णावतंस के रूप में झूलता था और चंचल नील अलकों की अचंचल शोभा को सौ गुना बढ़ा देता था। वह महादेव के मन में क्षोभ पैदा करता था, मर्यादा पुरुषोत्तम के चित्त में सीता का भ्रम पैदा करता था और मनोजन्मा देवता के एक इशारे पर कंधों पर से ही फूट उठता था। अशोक किस कुशल अभिनेता के समान झम से रंगमंच पर आता है और दर्शकों को अभिभूत करके खप-से निकल जाता है। क्यों ऐसा हुआ? कंदर्प-देवता के अन्य बाणों की कदर तो आज भी कवियों की दुनिया में ज्यों-की-त्यों है। अरविंद को किसने भुलाया, आम कहाँ छोड़ा गया और नीलोत्पल की माया को कौन काट सका? नवमल्लिका की अवश्य ही अब विशेष पूछ नहीं है; किन्तु उसकी इससे अधिक कदर कभी थी भी नहीं। भुलाया गया है अशोक। मेरा मन उमड़-घुमड़कर भारतीय रस-साधना के पिछले हजारों वर्षों पर बरस जाना चाहता है। क्या यह मनोहर पुष्प भुलाने की चीज थी? सहृदयता क्या लुप्त हो गई थी? कविता क्या सो गई थी? ना, मेरा मन यह सब मानने को तैयार नहीं है। जले पर नमक तो यह है कि एक तरंगायित पत्रवाले निफूले पेड़ को सारे उत्तर भारत में अशोक कहा जाने लगा। याद भी किया तो अपमान करके।

लेकिन मेरे मानने-न मानने से होता क्या है? ईसवी सन् के आरम्भ के आस-पास अशोक का शानदार पुष्प भारतीय धर्म, साहित्य और शिल्प में अद्भुत महिमा के साथ आया था। उसी समय शताब्दियों के परिचित यक्षों और गंधर्वों ने भारतीय धर्म-साधना को एकदम नवीन रूप में बदल दिया था। पण्डितों ने शायद ठीक ही सुझाया है कि गंधर्व और कंदर्प वस्तुतः एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न उच्चारण हैं। कंदर्प-देवता ने यदि अशोक को चुना है तो यह निश्चित रूप से एक आर्येतर सभ्यता की देन है। इन आर्येतर जातियों के उपास्य वरुण थे, कुबेर थे, वज्रपाणि यक्षपति थे। कंदर्प यद्यपि कामदेवता का नाम हो गया है तथापि है वह गन्धर्व का ही पर्याय। शिव से भिड़ने जाकर एक बार यह पिट चुके थे, विष्णु से डरते थे और बुद्धदेव से भी टक्कर लेकर लौट आये थे। लेकिन कंदर्प-देवता हार माननेवाले जीव न थे। बार-बार हारने पर भी वह झुके नहीं। नये-नये अस्त्रों का प्रयोग करते रहे। अशोक शायद अन्तिम अस्त्र था। बौद्ध धर्म को इस नये अस्त्र से उन्होंने घायल कर दिया, शैवमार्ग को अभिभूत कर दिया और शाक्त-साधना को झुका दिया। वज्रयान इसका सबूत है, कौल-साधना इसका प्रमाण है और कापालिक मत इसका गवाह है।

रवीन्द्रनाथ ने इस भारतवर्ष को 'महामानवसमुद्र' कहा है। विचित्र देश है वह! असुर आये, आर्य आये, शक आये, हूण आये, नाग आये, यक्ष आये, गंधर्व आये— न जाने कितनी मानव-जातियाँ यहाँ आयीं और आज के भारतवर्ष को बनाने में अपना हाथ लगा गईं। जिसे हम हिन्दू रीति-नीति कहते हैं, वे अनेक आर्य और आर्येतर उपादानों का अद्भुत मिश्रण है। एक-एक पशु, एक-एक पक्षी न जाने कितनी स्मृतियों का भार लेकर हमारे सामने उपस्थित हैं। अशोक की भी अपनी स्मृति-परम्परा है। आम की भी है, बकुल की भी है, चम्पे की भी है। सब क्या हमें मालूम है? जितना मालूम है, उसी का अर्थ क्या स्पष्ट हो सका है? न जाने

किस बुरे मुहूर्त में मनोजन्मा देवता ने शिव पर बाण फेंका था? शरीर जलकर राख हो गया और वामन-पुराण (षष्ठ अध्याय) की गवाही पर हमें मालूम है कि उनका रत्नमय धनुष टूटकर खण्ड-खण्ड हो धरती पर गिर गया जहाँ मूठ थी, वह स्थान रुक्मणि से बना था, वह टूट कर धरती पर गिरा और चम्पे का फूल बन गया! हीरे का बना हुआ जो नाह-स्थान था, वह टूटकर गिरा और मौलसरी के मनोहर पुष्पों में बदल गया। अच्छा ही हुआ। इन्द्रनील मणियों का बना हुआ कोटि-देश भी टूट गया और सुन्दर पाटल-पुष्पों में परिवर्तित हो गया। यह भी बुरा नहीं हुआ। लेकिन सबसे सुन्दर बात यह हुई कि चन्द्रकान्त-मणियों का बना हुआ मध्यदेश टूटकर चमेली बन गया और विद्रुम की बनी निम्नतर कोटि बेला बन गई, स्वर्ग को जीतने वाला कठोर धनुष जो धरती पर गिरा तो कोमल फूलों में बदल गया। स्वर्गीय वस्तुएँ धरती से मिले बिना मनोहर नहीं होतीं।

परन्तु मैं दूसरी बात सोच रहा हूँ। इस कथा का रहस्य क्या है? यह क्या पुराणकार की सुकुमार कल्पना है या सचमुच ये फूल भारतीय संसार में गन्धर्वों की देन हैं? एक निश्चित काल के पूर्व इन फूलों की चर्चा हमारे साहित्य में मिलती भी नहीं। सोम तो निश्चित रूप से गंधर्वों से खरीदा जाता था। ब्राह्मण-ग्रन्थों में यज्ञ की विधि में यह विधान सुरक्षित रह गया है। ये फूल भी क्या उन्हीं से मिले?

कुछ बातें तो मेरे मस्तिष्क में बिना सोचे ही उपस्थित हो रही हैं। यक्षों और गंधर्वों के देवता—कुबेर, सोम, अप्सराएँ—यद्यपि बाद के ब्राह्मण-ग्रंथों में भी स्वीकृत हैं, तथापि पुराने साहित्य में आप देवता के रूप में ही मिलते हैं। बौद्ध-साहित्य में तो बुद्धदेव को ये कई बार बाधा देते हुए बताये गये हैं। महाभारत में ऐसी अनेक कथाएँ आती हैं जिनमें संतानार्थिनी स्त्रियाँ वृक्षों के अपदेवता यक्षों के पास सन्तान-कामिनी होकर जाया करती थीं। यक्ष और यक्षिणी साधारणतः विलासी और उर्वरता-जनक देवता समझे जाते थे। कुबेर तो अक्षय निधि की अधीश्वर भी हैं। 'यक्ष्मा' नामक रोग के साथ भी इन दोनों का सम्बन्ध जाता है, भरहुत, बोधगया, साँची आदि में उत्कीर्ण मूर्तियों में संतानार्थिनी स्त्रियों का यक्षों के सान्निध्य के लिए वृक्षों के पास जाना अंकित है। इन वृक्षों के पास अंकित मूर्तियों की स्त्रियाँ प्रायः नग्न हैं, केवल कटिदेश में एक चौड़ी मेखला पहने हैं। अशोक इन वृक्षों में सर्वाधिक रहस्यमय है। सुन्दरियों के चरण-ताड़न से उसमें दोहद का संचार होता है और परवर्ती धर्म-ग्रन्थों से यह भी पता चलता है कि चैत्र शुक्ल अष्टमी को व्रत करने और अशोक की आठ पत्तियों के भक्षण से स्त्री की सन्तान-कामना फलवती होती है। अशोक कल्प में बताया गया है कि अशोक के फूल दो प्रकार के होते हैं—सफेद और लाल। सफेद तो तांत्रिक क्रियाओं में सिद्धिप्रद समझकर व्यवहृत होता है और लाल स्मरणवर्धक होता है। इन सारी बातों का रहस्य क्या है? मेरा मन प्राचीन काल के कुंझटिकाच्छन्न आकाश में दूर तक उड़ना चाहता है। हाय, पंख कहाँ हैं?

वह मुझे प्राचीन युग की बात मालूम होती है। आर्यों का लिखा हुआ साहित्य ही हमारे पास बचा है। उसमें सब कुछ आर्य दृष्टिकोण से ही देखा गया है। आर्यों से अनेक जातियों का संघर्ष हुआ। कुछ ने उनकी अधीनता नहीं मानी, वे कुछ ज्यादा गर्वीली थीं। संघर्ष खूब हुआ। पुराणों में इसके प्रमाण हैं। यह इतनी पुरानी बात है कि सभी संघर्षकारी शक्तियाँ बाद में देवयोनि-जात मान ली गयीं। पहला संघर्ष शायद असुरों से हुआ। यह बड़ी गर्वीली जाति थी। आर्यों का प्रभुत्व इसने कभी नहीं माना। फिर दानवों, दैत्यों और राक्षसों से संघर्ष हुआ। गंधर्वों और यक्षों से कोई संघर्ष नहीं हुआ। वे शायद शांतिप्रिय जातियाँ थीं। भरहुत, साँची, मथुरा आदि में प्राप्त यक्षिणी मूर्तियों का गठन और बनावट देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये जातियाँ पहाड़ी थीं। हिमालय का देश ही गंधर्व, यक्ष और अप्सराओं की निवास-भूमि है। इनका समाज सम्भवतः उस स्तर पर था, जिसे आजकल के पण्डित 'पुनालुअन सोसाइटी' कहते हैं। शायद इससे भी अधिक आदिम! परन्तु वे नाच-गान में कुशल थे। यक्ष तो धनी भी थे। वे लोग वानरों और भालुओं की भाँति कृषिपूर्व स्थिति में भी नहीं थे और राक्षसों और असुरों की भाँति व्यापार-वाणिज्य वाली स्थिति में भी नहीं। वे मणियों और रत्नों का सन्धान जानते थे, पृथ्वी के नीचे गड़ी हुईं निधियों की जानकारी रखते थे और अनायास धनी हो जाते थे। सम्भवतः इसी कारण उनमें विलासिता की मात्रा अधिक थी। परवर्तीकाल में यह बहुत सुखी जाति मानी जाती थी। यक्ष और गन्धर्व एक ही श्रेणी के थे, परन्तु आर्थिक स्थिति दोनों की थोड़ी भिन्न थी। किस प्रकार कंदर्प-देवता को अपनी गन्धर्वसेना के साथ इन्द्र का मुसाहिब बनना पड़ा, वह मनोरंजक कथा है। पर यहाँ वह सब पुरानी बातें क्यों रटी जायँ? प्रकृत यह है कि बहुत पुराने जमाने में आर्य लोगों को अपनी जातियों से निपटना पड़ा था। जो गर्वीली थीं, हार मानने को प्रस्तुत नहीं थीं, परवर्ती साहित्य में उनका स्मरण घृणा के साथ किया गया और जो सहज ही मित्र बन गयीं, उनके प्रति अवज्ञा और उपेक्षा का भाव नहीं रहा। असुर, राक्षस, दानव और दैत्य पहली श्रेणी में तथा यक्ष, गंधर्व, किन्नर, सिद्ध, विद्याधर, वानर, भालू आदि दूसरी श्रेणी में आते हैं। परवर्ती हिन्दू समाज इन सबको बड़ी अद्भुत शक्तियों का आश्रय मानता है, सबमें देवता-बुद्धि का पोषण करता है।

अशोक-वृक्ष की पूजा इन्हीं गन्धर्वों और यक्षों की देन है। प्राचीन साहित्य में इस वृक्ष की पूजा के उत्सवों का बड़ा सरस वर्णन मिलता है। असल पूजा अशोक की नहीं, बल्कि उसके अधिष्ठाता कंदर्प-देवता की होती थी। इसे 'मदनोत्सव' कहते थे। महाराज

भोज के 'सरस्वती-कण्ठाभरण' से जान पड़ता है कि यह उत्सव त्रयोदशी के दिन होता है। 'मालविकाग्निमित्र' और 'रत्नावली' में इस उत्सव का बड़ा सरस मनोहर वर्णन मिलता है। मैं जब अशोक के लाल स्तवकों को देखता हूँ तो मुझे वह पुराना वातावरण प्रत्यक्ष दिखायी दे जाता है। राजघरानों में साधारणतः रानी ही अपने सनूपुर चरणों के आघात से इस रहस्यमय वृक्ष को पुष्पित किया करती थीं। कभी-कभी रानी अपने स्थान पर किसी अन्य सुन्दरी को नियुक्त कर दिया करती थीं। कोमल हाथों में अशोक-पल्लवों का कोमलतर गुच्छ आया, अलक्तक से रंजित नूपुरमय चरणों के मृदु आघात से अशोक का पाद-देश आहत हुआ—नीचे हलकी रुनझुन और ऊपर लाल फूलों का उल्लास! किसलयों और कुसुम-स्तवकों की मनोहर छाया के नीचे स्फटिक के आसन पर अपने प्रिय को बैठाकर सुन्दरियाँ अबीर, कुंकुम, चन्दन और पुष्प-सम्भार से पहले कंदर्प-देवता की पूजा करती थीं और बाद में सुकुमार भंगिमा से पति के चरणों पर वसन्त-पुष्पों की अंजलि बिखेर देती थीं। मैं सचमुच इस उत्सव को मादक मानता हूँ। अशोक के स्तवकों में वह मादकता आज भी है, पर पूछता कौन है कि इन फूलों के साथ क्या मामूली स्मृति जुड़ी हुई है? भारतवर्ष का सुवर्ण-युग इस पुष्प के प्रत्येक दल में लहरा रहा है।

कहते हैं, दुनिया बड़ी भुलक्कड़ है! केवल उतना ही याद रखती है, जितने से उसका स्वार्थ सधता है। बाकी को फेंककर आगे बढ़ जाती है। शायद अशोक से उसका स्वार्थ नहीं सधा। क्यों उसे वह याद रखती? सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है।

अशोक का वृक्ष जितना भी मनोहर हो, जितना भी रहस्यमय हो, जितना भी अलंकारमय हो, परन्तु है वह उस विशाल सामंत-सभ्यता की परिष्कृत रुचि का ही प्रतीक, जो साधारण प्रजा के परिश्रमों पर पली थी, उसके रक्त के संसार-कणों को खाकर बड़ी हुई थी और लाखों-करोड़ों की उपेक्षा से जो समृद्ध हुई थी। वे सामन्त उखड़ गये, समाज ढह गए, और मदनोत्सव की धूमधाम भी मिट गयी। सन्तान-कामिनियों को गंधर्वों से अधिक शक्तिशाली देवताओं का वरदान मिलने लगा—पीरों ने, भूत-भैरवों ने, काली-दुर्गा ने यक्षों की इज्जत घटा दी। दुनिया अपने रास्ते चली गई, शोक पीछे छूट गया।

मुझे मानव-जाति की दुर्दम-निर्मम धारा के हजारों वर्ष का रूप साफ दिखायी दे रहा है। मनुष्य की जीवनी-शक्ति बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को धोती-बहाती यह जीवन-धारा आगे बढ़ी है। संघर्षों से मनुष्य ने नयी शक्ति पायी है। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बाद की बात है। सब कुछ में मिलावट है, सब कुछ अविशुद्ध है। शुद्ध केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा (जीने की इच्छा)। वह गंगा की अबाधित-अनाहत धारा के समान सब कुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है। सभ्यता और संस्कृति का मोह क्षण-भर बाधा उपस्थित करता है, धर्माचार का संस्कार थोड़ी देर तक इस धारा से टक्कर लेता है, पर इस दुर्दम धारा में सब कुछ बह जाते हैं। जितना कुछ इस जीवनी-शक्ति को समर्थ बनाता है, उतना उसका अंग बन जाता है, बाकी फेंक दिया जाता है। धन्य हो महाकाल, तुमने कितनी बार मदनदेवता का गर्व-खण्डन किया है, धर्मराज के गारागार में क्रान्ति मचाई है, यमराज के निर्णय तारल्य को पी लिया है, विधाता के सर्वकर्तृत्व के अभिमान को चूर्ण किया है। आज हमारे भीतर जो मोह है, संस्कृति और कला के नाम पर जो आसक्ति है, धर्माचार और सत्यनिष्ठा के नाम पर जो जड़िमा है, उसमें का कितना भाग तुम्हारे कुंठनृत्य से ध्वस्त हो जाएगा, कौन जानता है! मनुष्य की जीवन-धारा फिर भी अपनी मस्तानी चाल से चलती जाएगी। आज अशोक के पुष्प स्तवकों को देखकर मेरा मन उदास हो गया है, कल न जाने किस वस्तु को देखकर किस सहृदय के हृदय में उदासी की रेखा खिल उठेगी। जिन बातों को मैं अत्यन्त मूल्यवान समझ रहा हूँ और जिनके प्रचार के लिए चिल्ला-चिल्ला कर गला सुखा रहा हूँ, उनमें कितनी जिएँगी और कितनी बह जाएँगी? कौन जानता है! मैं क्या शौक से उदास हुआ हूँ, माया काटे कटती नहीं। उस युग के साहित्य और शिल्प मन को मसले दे रहे हैं। अशोक के फूल ही नहीं, किसलय भी हृदय को कुरेद रहे हैं। कालिदास जैसे कल्पकवि ने अशोक के पुष्प को ही नहीं, किसलयों को भी मदमत्त करने वाला बताया था—अवश्य ही शर्त यह थी कि वह दयिता (प्रिया) के कानों में झूम रहा हो—**'किसलय प्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिता श्रवणार्पितः!'** परन्तु शाखाओं में लंबित, वायु लुलित किसलयों में भी मादकता है। मेरी नस-नस से आज करुण-उल्लास की झंझा उत्थित हो रही हैं। मैं सचमुच उदास हूँ।

आज जिसे हम बहुमूल्य संस्कृति मान रहे हैं, वह क्या ऐसी ही बनी रहेगी? सम्राटों-सामन्तों ने जिस आचार-निष्ठा को इतना मोहक और मादक रूप दिया था, वह लुप्त हो गई; धर्माचार्यों ने जिस ज्ञान और वैराग्य को इतना महार्घ समझा था, वह लुप्त हो गया; मध्ययुग के मुसलमान रईसों के अनुकरण पर जो रस-राशि उमड़ी थी, वह वाष्प की भाँति उड़ गई, क्या यह मध्ययुग के कंकाल में लिखा हुआ व्यावसायिक-युग का कमल ऐसा ही बना रहेगा? महाकाल के प्रत्येक पदाघात में धरती धसकेगी। उसके कुंठनृत्य की प्रत्येक चारिका कुछ-न-कुछ लपेटकर ले जाएगी। सब बदलेगा, सब विकृत होगा—सब नवीन बनेगा।

भगवान् बुद्ध ने मार-विजय के बाद वैरागियों की पलटन खड़ी की थी। असल में 'मार' मदन का भी नामांतर है। कैसा मधुर

और मोहक साहित्य उन्होंने दिया। पर न जाने कब यक्षों के वज्रपाणि नामक देवता इस वैराग्यप्रवण धर्म में घुसे और बोधिसत्वों के शिरोमणि बन गये फिर वज्रायान का अपूर्व धर्ममार्ग प्रचलित हुआ। त्रिरत्नों में मदन देवता ने आसन पाया। वह एक अजीब आँधी थी। इसमें बौद्ध बह गये, शैव बह गये, शाक्त बह गये। उन दिनों **'श्री सुन्दरीसाधनतत्पराणां योगश्च भोगश्च करस्थ एव'** की महिमा प्रतिष्ठित हुई। काव्य और शिल्प के मोहक अशोक ने अभिचार में सहायता दी। मैं अचरज से उस योग और भोग की मिलन-लीला को देख रहा हूँ। यह भी क्या जीवनी शक्ति का दुर्दम अभियान था? कौन बताएगा कि कितने विध्वंस के बाद इस अपूर्व धर्म-मत की सृष्टि हुई थी? अशोक स्तवक का हर फूल और हर दल इस विचित्र परिणति की परम्परा ढोये जा रहा है। कैसा झबरा-सा गुल्म है।

मगर उदास होना भी बेकार है। अशोक आज भी उसी मौज में है, जिसमें आज से दो हजार वर्ष पहले था। कहीं भी तो कुछ नहीं बिगड़ा है, कुछ भी तो नहीं बदला है। बदली है मनुष्य की मनोवृत्ति। यदि बदले बिना वह आगे बढ़ सकती तो शायद वह भी नहीं बदलती। और यदि वह न बदलती और व्यावसायिक संघर्ष आरम्भ हो जाता—मशीन का रथ घर्घर चल पड़ता—विज्ञान का सावेग धावन चल निकलता, तो बड़ा बुरा होता।

हम पिस जाते। अच्छा ही हुआ जो वह बदल गई। पूरी कहाँ बदली है? पर बदल तो रही है। अशोक का फूल तो उसी मस्ती में हँस रहा है। पुराने चित्त से इसको देखने वाला उदास होता है। वह अपने को पण्डित समझता है। पण्डिताई भी एक बोझ है—जितनी भी भारी होती है, उतनी ही तेजी से डुबाती है। जब वह जीवन का अंग बन जाती है तो सहज हो जाती है। तब वह बोझ नहीं रहती। वह उस अवस्था में उदास भी नहीं करती। कहाँ! अशोक का कुछ भी तो नहीं बिगड़ा है। कितनी मस्ती में झूम रहा है। कालिदास इसका रस ले सके थे—अपने ढंग से। मैं भी ले सकता हूँ, अपने ढंग से। उदास होना बेकार है।

शब्दार्थ

नीलोत्पल = नीला कमल। **नवमल्लिका** = चमेली। **कौल साधना** = प्रतिज्ञा, उत्तम कुल। **कंदर्प-देवता** = कामदेव। **मनोहर** = मन को लुभानेवाला। **तूणीर** = तरकस। **पुष्पित** = फूलों से लदे हुए। **उदास** = चिन्तित। **दूरदर्शी** = भविष्य की घटनाओं को समझनेवाला। **विचित्र** = अद्‌भुत। **सौकुमार्य** = सुकुमारता। **गरिमा** = प्रभुत्व। **कर्णावतंस** = कर्णफूल। **अलकों** = सिर के बालों में। **आघात** = ठोकर। **मृदु** = मधुर। **पुरुषोत्तम** = पुरुषों में उत्तम। **मनोजन्मा** = मन की इच्छा से जन्म लेनेवाला। **इशारे** = संकेत से। **कदर** = सम्मान। **अरविंद** = कमल। **तरंगायित** = लहरदार। **निफूले** = पुष्प रहित। **शानदार** = प्रभावशाली। **शिल्प** = मूर्तिकला। **उपास्य** = उपासना के योग्य। **वज्रपाणि** = हाथों में वज्र शस्त्र धारण करनेवाला। **शैवमार्ग** = शैव मतावलम्बी। **स्तवकों** = फूलों के गुच्छे। **हतभाग्य** = भाग्यहीन। **अन्तर्यामी** = ईश्वर। **निर्गम** = बाहर निकलना। **आसिंजनकारी** = झंकार उत्पन्न करने वाले। **सहृदयता** = उदारता, सज्जनता। **लुप्त होना** = गायब होना। **उपास्य** = देवता। **उपादान** = वह द्रव्य जिससे कोई वस्तु बने। **पाटल** = गुलाब। **विद्रुम** = कोपल, मूँगा, रत्न। **सन्तानार्थिनी** = सन्तान चाहने वाली। **अपदेवता** = राक्षस, दुष्टदेव। **अक्षय** = जिसका क्षय न हो। **अधीश्वर** = स्वामी। **दोहद** = रमणियों के पदाघात से वृक्षों में फूलों का लगना। **व्यवहृत** = व्यवहार में लाना। **स्मरणवर्द्धक** = स्मृति बढ़ाने वाला, काम को बढ़ाने वाला। **भक्षण** = खाना। **कुज्झटिकाच्छन्न** = कोहरे से आवृत्त आकाश में। **सन्धान** = संघटन, जोड़ना। **अनायास** = अचानक। **मुहासिब** = साथी, साथ उठने-बैठने वाला। **प्रकृत** = शुद्ध, असल। **अधिष्ठाता** = नियामक, प्रतिष्ठापना करने वाला। **अलक्तक** = आलता, महावर। **स्फटिक** = सूर्यकान्त, मणि। **दुर्दम** = कठिनता से दमन किया जाने वाला। **लुलित** = हिलाए गए। **झंझा** = आँधी युक्त वर्षा। **महार्घ** = महँगा। **विध्वंश** = विनाश।

अभ्यास प्रश्न

गद्यांश पर आधारित प्रश्न

1. निम्नलिखित गद्यांशों पर आधारित प्रश्नों के उत्तर दीजिए—

(क) भारतीय साहित्य में, और इसलिए जीवन में भी, इस पुष्प का प्रवेश और निर्गम दोनों ही विचित्र नाटकीय व्यापार है। ऐसा तो कोई नहीं कह सकता कि कालिदास के पूर्व भारतवर्ष में इस पुष्प का कोई नाम ही नहीं जानता था, परन्तु

कालिदास के काव्यों में यह जिस शोभा और सौकुमार्य का भार लेकर प्रवेश करता है, वह पहले कहाँ था। उस प्रवेश में नववधू के गृह-प्रवेश की भाँति शोभा है, गरिमा है, पवित्रता है और सुकुमारता है। फिर एकाएक मुसलमानी सल्तनत की प्रतिष्ठा के साथ-ही-साथ यह मनोहर पुष्प साहित्य के सिंहासन से चुपचाप उतार दिया गया। नाम तो लोग बाद में भी लेते थे, पर उसी प्रकार जिस प्रकार बुद्ध, विक्रमादित्य का। अशोक को जो सम्मान कालिदास से मिला, वह अपूर्व था। सुन्दरियों के आसिंजनकारी नूपुरवाले चरणों के मृदु आघात से वह फूलता था, कोमल कपोलों पर कर्णावतंस के रूप में झूलता था और चंचल नील अलकों की अचंचल शोभा को सौ गुना बढ़ा देता था। वह महादेव के मन में क्षोभ पैदा करता था, मर्यादा पुरुषोत्तम के चित्त में सीता का भ्रम पैदा करता था और मनोजन्मा देवता के एक इशारे पर कंधों पर से ही फूट उठता था। **[2020 ZF]**

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।
(ii) अशोक के फूल को किस कवि ने सम्मान दिया?
(iii) उपर्युक्त गद्यांश में किस प्रसंग का वर्णन है?
(iv) अशोक पुष्प को सम्मान किससे मिला?
(v) गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(vi) कालिदास के काव्यों में अशोक का प्रवेश किस प्रकार हुआ?
(vii) किस काल में अशोक को साहित्य के सिंहासन से उतार दिया गया?
(viii) अशोक का अपूर्व सम्मान किससे मिला?
(ix) किसके मृत्यु आघात से अशोक फूलता था?

(ख) रवीन्द्रनाथ ने इस भारतवर्ष को 'महामानवसमुद्र' कहा है। विचित्र देश है वह! असुर आये, आर्य आये, शक आये, हूण आये, नाग आये, यक्ष आये, गंधर्व आये— न जाने कितनी मानव-जातियाँ यहाँ आयीं और आज के भारतवर्ष को बनाने में अपना हाथ लगा गईं। जिसे हम हिन्दू रीति-नीति कहते हैं, वे अनेक आर्य और आर्येतर उपादानों का अद्भुत मिश्रण हैं। एक-एक पशु, एक-एक पक्षी न जाने कितनी स्मृतियों का भार लेकर हमारे सामने उपस्थित हैं। अशोक की भी अपनी स्मृति-परम्परा है। आम की भी है, बकुल की भी है, चम्पे की भी है। सब क्या हमें मालूम है?

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश के लेखक एवं पाठ का नाम लिखिए।
(ii) भारत में कौन-कौन सी जातियाँ आयीं?
(iii) रवीन्द्रनाथ ने भारतवर्ष को किसकी संज्ञा दी है?
(iv) प्रस्तुत गद्यांश में किस प्रसंग का वर्णन किया है?
(v) गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(vi) रवीन्द्रनाथ ने किसे महामानव समुद्र कहा है?
(vii) भारतवर्ष के निर्माण में किन-किन का सहयोग रहा है?
(viii) आर्य, शक, हूण कहाँ आये?

(ग) मुझे मानव-जाति की दुर्दम-निर्मम धारा के हजारों वर्ष का रूप साफ दिखायी दे रहा है। मनुष्य की जीवनी-शक्ति बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को धोती-बहाती यह जीवन-धारा आगे बढ़ी है। संघर्षों से मनुष्य ने नयी शक्ति पायी है। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बाद की बात है। सब कुछ में मिलावट है, सब कुछ अविशुद्ध है। शुद्ध है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा (जीने की इच्छा)। वह गंगा की अबाधित-अनाहत धारा के समान सब कुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है।

[2019 CM, CS, CU, 20 ZI]

प्रश्न– (i) प्रस्तुत गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।
(ii) मनुष्य की जीवन-शक्ति कैसी है?

(iii) हमारे सामने आज समाज का स्वरूप कैसा है?

(iv) लेखक ने मनुष्य की जिजीविषा को किस रूप में प्रस्तुत किया है?

(v) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(vi) मनुष्य को क्या स्पष्ट दिखाई दे रहा है?

(vii) मनुष्य ने नई शक्ति किससे पाई है?

(viii) 'धर्माचारों' और 'विश्वासों' का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

(घ) मगर उदास होना भी बेकार है। अशोक आज भी उसी मौज में है, जिसमें आज से दो हजार वर्ष पहले था। कहीं भी तो कुछ नहीं बिगड़ा है, कुछ भी तो नहीं बदला है। बदली है मनुष्य की मनोवृत्ति। यदि बदले बिना वह आगे बढ़ सकती तो शायद वह भी नहीं बदलती। और यदि वह न बदलती और व्यावसायिक संघर्ष आरम्भ हो जाता—मशीन का रथ घर्घर चल पड़ता—विज्ञान का सावेग धावन चल निकलता, तो बड़ा बुरा होता।
हम पिस जाते। अच्छा ही हुआ जो वह बदल गई। पूरी कहाँ बदली है? पर बदल तो रही है। अशोक का फूल तो उसी मस्ती में हँस रहा है। पुराने चित्त से इसको देखने वाला उदास होता है। वह अपने को पण्डित समझता है। पण्डिताई भी एक बोझ है—जितनी भी भारी होती है, उतनी ही तेजी से डुबाती है। जब वह जीवन का अंग बन जाती है तो सहज हो जाती है। तब वह बोझ नहीं रहती। वह उस अवस्था में उदास भी नहीं करती। कहाँ! अशोक का कुछ भी तो नहीं बिगड़ा है। कितनी मस्ती में झूम रहा है। कालिदास इसका रस ले सके थे—अपने ढंग से। मैं भी ले सकता हूँ, अपने ढंग से। उदास होना बेकार है।

अथवा मगर उदास होना .... तो बड़ा बुरा होता। **[2020 ZL]**

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।

(ii) पण्डिताई किस प्रकार एक बोझ है?

(iii) प्रस्तुत गद्यांश में किसकी विवेचना की गयी है।

(iv) प्रस्तुत गद्यांश में लेखक किसकी मनोवृत्ति बदलने की बात कर रहा है?

(v) गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(vi) लेखक के अनुसार किसमें परिवर्तन हुआ है?

(vii) मनोवृत्ति और धावन शब्दों का आशय लिखिए।

(viii) अशोक आज भी उसी मौज में क्यों है?

(ङ) कहते हैं, दुनिया बड़ी भुलक्कड़ है। केवल उतना ही याद रखती है, जितने से उसका स्वार्थ सधता है। बाकी को फेंककर आगे बढ़ जाती है। शायद अशोक से भी उसका स्वार्थ नहीं सधा। क्यों उसे वह याद रखती? सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।

(ii) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(iii) "सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है।" इसे स्पष्ट कीजिए।

(iv) लेखक ने गद्यांश में किस प्रकार के लोगों को स्वार्थी कहा है?

(v) प्रस्तुत गद्यांश में किस प्रसंग की चर्चा की गयी है?

(च) अशोक को जो सम्मान कालिदास से मिला, वह अपूर्व था। सुन्दरियों के आसिंजनकारी नूपुरवाले चरणों के मृदु आघात से वह फूलता था, कोमल कपोलों पर कर्णावतंस के रूप में झूलता था और चंचल नील अलकों की अचंचल शोभा को सौ गुना बढ़ा देता था। वह महादेव के मन में क्षोभ पैदा करता था, मर्यादा पुरुषोत्तम के चित्त में सीता का भ्रम पैदा करता था और मनोजन्मा देवता के एक इशारे पर कन्धों पर से ही फूट उठता था।

प्रश्न– (i) प्रस्तुत गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।

(ii) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) प्रस्तुत गद्यांश में लेखक का क्या उद्देश्य है?
(iv) किस फूल की सुन्दरता के कारण सुन्दरियाँ उन्हें अपने कानों का आभूषण बनाती हैं?
(v) संस्कृत के किस कवि ने अशोक को अपने साहित्य में स्थान दिया?

(छ) अशोक का वृक्ष जितना भी मनोहर हो, जितना भी रहस्यमय हो, जितना भी अलंकारमय हो, परन्तु है वह उस विशाल सामंत-सभ्यता की परिष्कृत रुचि का ही प्रतीक, जो साधारण प्रजा के परिश्रमों पर पली थी, उसके रक्त के संसार-कणों को खाकर बड़ी हुई थी और लाखों-करोड़ों की उपेक्षा से जो समृद्ध हुई थी। वे सामन्त उखड़ गये, समाज ढह गए, और मदनोत्सव की धूमधाम भी मिट गयी। सन्तान-कामनियों को गंधर्वों से अधिक शक्तिशाली देवताओं का वरदान मिलने लगा–पीरों ने, भूत-भैरवों ने, काली-दुर्गा ने यक्षों की इज्जत घटा दी। दुनिया अपने रास्ते चली गयी, शोक पीछे छूट गया। **[2019 CX, 20 ZA, ZD]**

प्रश्न– (i) सामन्त सभ्यता की परिष्कृत रुचि का प्रतीक कौन है?
(ii) लाखों-करोड़ों की उपेक्षा से कौन समृद्ध हुई थी?
(iii) आज उस सामंती सभ्यता की क्या स्थिति है?
(iv) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(v) पाठ का शीर्षक तथा लेखक का नामोल्लेख कीजिए।
(vi) अशोक का वृक्ष किसका प्रतीक है?
(vii) सामंत सभ्यता किसके आधार पर पली-बढ़ी?
(viii) सन्तान-कामनियों को किसका वरदान प्राप्त होने लगा?
(ix) यक्षों की प्रतिष्ठा किसने घटा दी?
(x) अशोक के वृक्ष की क्या विशेषताएँ हैं?
(xi) सामन्त सभ्यता से क्या तात्पर्य है?
(xii) सन्तान कामनियों को किसका शक्तिशाली वरदान मिलने लगा?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का जीवन-परिचय देते हुए उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।
[2017 MB, MC, MD, MF, MG, 19 CC, CN, CO, CQ, CR, 20 ZA, ZB, ZC, ZD, ZG]
2. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की साहित्यिक सेवाओं एवं उनकी भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए। **[2017 MC, 19 CM]**
3. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक परिचय दीजिए।

अथवा डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक परिचय देते हुए उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।
[2020 ZH, ZK, ZL, ZM]

4. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का जीवन-परिचय देते हुए उनकी कृतियों तथा भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।
5. 'अशोक के फूल' पाठ का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
6. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए—
(क) स्वर्गीय वस्तुएँ धरती से मिले बिना मनोहर नहीं होतीं।
(ख) दुनिया बड़ी भुलक्कड़ है। केवल उतना याद रखती है, जितने से उसका स्वार्थ सधता है।
(ग) पण्डिताई भी एक बोझ है– जितनी भी भारी होती है, उतनी ही तेजी से डुबाती है।
(घ) संघर्षों से मनुष्य ने नई शक्ति पाई है।
(ङ) सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अशोक के फूल का लेखक ने किस रूप में वर्णन किया है?
2. अशोक के फूल की विशेषताएँ लिखिए।
3. लेखक ने अशोक के फूल में किन महान् मानवीय गुणों का आभास पाया है?
4. 'अशोक के फूल' के क्या-क्या गुण सुझाये गये हैं? वे कहाँ तक सार्थक हैं?
5. 'अशोक के फूल' में लेखक के व्यक्तित्व की झलक देने वाले स्थलों का संकेत कीजिए।
6. 'अशोक के फूल' निबन्ध में लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।
7. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ऐसा क्यों कहा कि पुष्पित अशोक को देखकर मेरा मन उदास हो जाता है।
8. संस्कृत के किस कवि ने अशोक के फूल का सर्वाधिक गुणगान किया है?
9. इस लेख के लेखक के व्यक्तित्व की झलक देने वाले स्थलों का संकेत कीजिए।
10. 'अशोक के फूल' निबन्ध में लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।
11. निबन्धकार ने अशोक के फूल को अभिनेता के रूप में क्यों माना है?
12. मुसलमानी सल्तनत के बाद साहित्य में अशोक के फूल को क्यों भुला दिया गया।
13. कविवर रवीन्द्रनाथ ने 'महामानव समुद्र' किसे कहा है?
14. अशोक कल्प में अशोक के कितने प्रकार के फूलों का वर्णन है?
15. 'अशोक के फूल' के महत्त्व पर लेखक ने क्या विचार व्यक्त किया है?
16. 'अशोक के फूल' से जीवन के लिए क्या प्रेरणा मिलती है?